भाजपा उत्तरप्रदेश समेत चार राज्यों में बहुमत की सरकार बनाएगी। हालांकि पंजाब में त्रिकोणीय मुकाबला जरूर है। वाराणसी में तीन दिनों तक प्रधानमंत्री के प्रचार पर सवाल उठाना गलत है।

अमित शाह, भाजपा अध्यक्ष

नफरत के निशाने पर हैं अप्रवासी

अविनाश पांडेय 'समर'
(अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कार्यकर्ता)
email: samaranarya@gmail.com

अमेरिका में भारतीयों पर हो रहे हमलों के बाद अब वहां नफरत का माहौल ज्यादा गंभीर हो गया है। देखा जाए, तो भारतीयों पर हमले की घटना तो तब भी नहीं हुई थी, जब अमेरिका आतंकी हमले से जूझ रहा था। निश्चित तौर पर अब हो रहे हमले राष्ट्रपति ट्रंप के उकसाऊ बयानों पर रोक न लगा पाने का खामियाजा है।

दृष्टिकोण

कंसास, केंट और फिर वाशिंगटन-कभी उन भारतीयों के सपनों का नाम होते थे, जिनकी ख्वाहिशें हिंदुस्तान के सपनीले शहर मुंबई की जद में भी नहीं समाती थीं। सिर्फ दस दिनों के भीतर अप्रवासी भारतीयों पर हुए तीन जानलेवा हमलों के बाद अब वे एक दहशत का नाम हैं। समुदाय की रीढ़ की हड्डी में उतर आई उस दहशत का नाम जिससे वे पहले कभी बावस्ता तक न थे। होते भी कैसे, संयुक्त राज्य अमेरिका के इस सबसे सफल, सुशिक्षित और धनी अप्रवासी समुदाय ने अमेरिकी सपने को दशकों नहीं, सदियों से अपने खून और पसीने से सींचा था। नासा से लेकर पेंटागन और सिलिकॉन वैली तक में बैठ उसको सैन्य महाशक्ति से ज्ञान महाशक्ति बनने का सफर तय करते देखने में अपनी अहम भूमिका तक निभाई थी।

फिर अचानक जो हुआ, वह किसी सदमे से कम नहीं था। खासतौर पर इसलिए भी कि इस बार हो रहे हमले जमाने से श्वेत दक्षिणपंथ का निशाना रही इस्लामिक पहचान पर नहीं, बल्कि सीधे-सीधे भारतीय पहचान पर हैं, दक्षिण एशियाई शक्लों पर हैं। अपने देश लौट जाओ की धमकी के साथ हो रहे ये हमले अब किसी खास पहनावे पर भी नहीं हैं। कंसास के एक बार में बैठे श्रीनिवास कुचिभोतला और केंट के अपने स्टोर में मौजूद हरनीश पटेल दोनों सामान्य अमेरिकी नागरिकों द्वारा रोजमर्रा पहने जाने वाले कपड़ों में ही थे। यहां से देखें तो साफ है कि पूरे समुदाय में डर उतर जाना लाजिमी है। सिर्फ समुदाय में ही क्यों-अमेरिकी अखबार न्यूयॉर्क टाइम्स लिखता है कि अब भारतीय समुदाय काम या दूसरे सिलसिलों में अमेरिका की यात्रा करने से भी घबरा रहा है।

सवाल यह कि 9/11 यानी वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए हमले के बाद उपजे नफरत के माहौल और नस्ली हमलों से भी अछूता रहा भारतीय समुदाय अब निशाने पर क्यों है? बेशक कानून के शासन वाले किसी देश में किसी समुदाय के किसी एक भी व्यक्ति के खिलाफ ऐसी एक भी घटना का होना दुखद है, पर घृणा की राजनीति से जन्म लेती ऐसी घटनाओं को पूरी तरह से रोकना असंभव भी है। फिर भी तब यह दिखा था कि भारतीय समुदाय पर जो चंद हमले हुए थे, वे सिख समुदाय के सदस्यों पर उनकी दाढ़ी के चलते पहचान की गलती से हुए थे। साफ है कि भारतीय पहचान तो तब भी नस्ली नफरत का निशाना नहीं थी। यहां सवाल बनता है कि फिर वही समुदाय एकाएक निशाने पर कैसे आ गया है। जवाब भी है, एकाएक नहीं आया।

एक अरसे तक गर्भपात, समलिंगी व विवाह जैसे धार्मिक मुद्दों, अश्वेत अमेरिकन और हिस्पैनिक्स जैसे नस्ली समुदायों से घृणा और हथियार रखने के अधिकार जैसे मुद्दों की जुगलबंदी के दम पर टिके अमेरिकी दक्षिणपंथ ने अपनी रणनीति बदलकर आर्थिक मुद्दों पर भी निगाह गड़ानी शुरू की थी, बाद में तो वर्तमान राष्ट्रपति और तब के रिपब्लिकन पार्टी के प्रत्याशी डोनाल्ड ट्रंप ने इसे ही अपने चुनाव अभियान का केंद्र बना दिया था। याद करें कि उन्होंने अपने चुनाव प्रचार के शुरुआती दौर से ही अप्रवासियों को अमेरिकी नागरिकों की नौकरियां चोरी करने का आरोपी बताने के साथ उन्हें वापस भेजने की बात कहना शुरू कर दिया था। यह भी कि इन अप्रवासियों में खासकर भारतीय, चीनी, मैक्सिकन्स और जापानी उनके निशाने पर थे। अफसोस, ट्रंप के ऐसे बयानों पर और देशों से उलट भारत सरकार ने कोई कड़ा आधिकारिक ऐतराज तक नहीं जताया था। निश्चित ही इससे श्वेत नस्लवादी ताकतों के हौसले बढ़े ही होंगे।

अमेरिकी-भारतीय समुदाय से भी यहां एक चूक हुई, यह कि उन्होंने खुद भी भारत सरकार पर ट्रंप के ऐसे नफरत फैलाने वाले बयानों के खिलाफ हस्तक्षेप करने की मांग को लेकर कोई दवाब बनाने की बड़ी कोशिश नहीं की। शायद भारतीय सरकार और समुदाय दोनों यह सोच रहे थे कि अंततः ट्रंप चुनाव जीत ही नहीं पाएंगे। पर अफसोस, कूटनीति तथ्यों और तर्कों से चलती हैं, कयासों से नहीं! दुखद यह है कि इन हमलों के बाद भी भारतीयों की सुरक्षा के अहम सवाल पर हीलाहवाली जारी ही लगती है। बेशक हमारी विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ऐसे मामलों में लगातार और सार्थक हस्तक्षेप करती रही हैं। इस बार भी उन्होंने पीड़ितों की जानकारी ली, उनके स्वास्थ्य की सूचना देने वाले ट्वीट किए, अमेरिका में भारतीय राजनयिकों को उनकी मदद करने को कहा। मगर यह सब दरअसल दूतावास के हिस्से के काम हैं।

विदेश मंत्री का काम होता है कि तुरंत अपने समकक्ष स्तर पर राजनयिक हस्तक्षेप करना, अपने नागरिकों की सुरक्षा की गारंटी मांगना, अपने देश में मौजूद उनके राजदूत को तलब कर कड़ा संदेश देना, पर ऐसा कुछ खास होता दिखा नहीं। आलम यह कि खुद भारतीय दूतावास ने इन हमलों को लेकर अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेंट से आधिकारिक चिंता जताने व भारतीय समुदाय की सुरक्षा करने की मांग करने में पूरे 10 दिन लगा दिए! तब तक जब बाकी दो हमले भी हो चुके थे। फिर ट्रंप के हमलों की निंदा करने में हफ्ते भर से ज्यादा का समय लेने पर आश्चर्य कैसा! बावजूद इसके कि हमले में जान गंवा बैठे दोनों भारतीयों को वापस नहीं लाया जा सकता, शायद औरों को बचाने के लिए अब भी बहुत देर नहीं हुई है। बशर्ते भारत सरकार इस मुद्दे पर स्थिति कड़ी कर ट्रंप प्रशासन से तीखा ऐतराज जताए और अपराधियों के खिलाफ त्वरित कार्रवाई की मांग करे।

अमेरिका में फिर से अप्रवासी भारतीयों के प्रति अनुकूल माहौल बनाने के लिए वहां के समुदाय को भारत सरकार पर दबाव बनाना पड़ेगा कि वह ट्रंप से अप्रवासियों के खिलाफ नफरत बढ़ा सकने वाली बयानबाजी तत्काल बंद करने की मांग करे। अगर हम ऐसा नहीं कर पाए, तो हालात बिगड़ेंगे। घृणा का जो वातावरण बना है वह किसी में फर्क नहीं करता, कहते हुए भारतीय अमेरिकी समुदाय के नेता जसमीत सिंह यह ठीक समझ रहे हैं। वह देख पा रहे हैं कि नफरत की आग अब दरवाजे पर है।

बैंकों की मनमानी पर रोक जरूरी

इरशाद अहमद
(स्वतंत्र टिप्पणीकार)
email: iahmed903@gmail.com

कई बैंकों द्वारा लेनदेन पर शुल्क लगाने को केंद्र सरकार ने गंभीरता से लिया है। सरकार ने बैंकों से कहा है कि वे फैसले पर विचार करें। निश्चित तौर पर इस निर्णय से लोग बैंक जाने से बचेंगे और पैसा घरों में रखेंगे। यह फैसला सरकार की भ्रष्टाचार मिटाने की मुहिम के लिए भी झटका होगा।

संदर्भ

एक के बाद एक, तीन बैंकों ने खाताधारकों द्वारा अपने ही जमा धन में से महीने में निर्धारित संख्या से अधिक बार निकासी और जमा पर शुल्क लगाकर उन लोगों को निराश किया है, जो बचत को घर में रखने के बजाय बैंकों में जमा करने के लिए प्रेरित हो रहे थे। बेशक, ऐसा करने वाले तीन निजी बैंक आईसीआईसीआई, एचडीएफसी और एक्सिस ही हैं, जिन्होंने चार मुफ्त जमा एवं निकासी की सुविधा तय करते हुए उसके बाद हर लेनदेन पर 150 रुपए शुल्क लगाने का फैसला किया है। इनकी देखादेखी अब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने भी न्यूनतम बैलेंस एक हजार रुपए जमा खाते में न रहने पर तो जुर्माना लगा ही दिया है, महीने में तीन बार से अधिक जमा कराने पर 50 रुपए प्रति लेनदेन पर शुल्क भी लगाने जा रहा है। इस फैसले के बाद देश में उठ रहे विरोध के स्वर के बीच केंद्र सरकार ने सभी बैंकों से अपने इस फैसले पर विचार करने को कहा है।

अब जबकि केंद्र सरकार ने बैंकों से लेनदेन पर चार्ज खत्म करने की बात कही है, तो बैंकों ने उलटे सरकार को ही कह दिया है कि वे तो डिजिटल बैंकिंग को बढ़ावा देने की पहल पर काम कर रहे हैं। उनके मुताबिक, सरकार भी तो यही चाहती है। मगर सवाल यह उठता है कि क्या बैंकों का यह फैसला बैंकिंग व्यवस्था की मूल भावना के अनुरूप है? बैंकों के इस फैसले के बाद देश के लोग एक बार फिर अपनी बचत घरों में ही रखने को बाध्य हो सकते हैं। जैसा कि नोटबंदी के बाद दिखा भी था कि घर में रखी नकदी को बदलने के चक्कर में बड़ी संख्या में कालाधन भी बैंकों तक पहुंच गया था। इसके बाद सरकार लगातार बैंकों में पैसा रखने को लेकर लोगों को प्रेरित कर रही थी। अब यदि एक अप्रैल से लेन-देन पर चार्ज लगाया जाता है, तो यह भ्रष्टाचार मिटाने का काम कर रही मोदी सरकार के लिए भी झटका होगा। साथ ही सरकार की ज्यादा से ज्यादा लोगों को बैंकिंग व्यवस्था और डिजिटल लेनदेन से जोड़ने की कोशिश के प्रतिकूल भी होगा। जनधन खाता योजना के बावजूद देश में बड़ी संख्या में लोगों का अभी भी बैंक में खाता नहीं है। लेनदेन पर शुल्क व्यवस्था से ऐसे लोग बैंक खाता खोलने से हतोत्साहित होंगे। जब लोग बैंक खाता खोलने के लिए प्रेरित ही नहीं होंगे या ज्यादा से ज्यादा धन बैंक में रखने से बचना चाहेंगे, तो डिजिटल लेनदेन को बढ़ावा कैसे मिलेगा? यह भी सवाल है।

जाहिर है कि बैंकों का शुल्क वसूल करने का फैसला बिना एकरूपता या पारदर्शिता के किया जा रहा है। पूरी संभावना है कि ये बैंक सिर्फ अतिरिक्त वसूली के उपाय ढूंढ रहे हैं। यह पहले भी कहा जा चुका है कि तब तक कोई सुधार नहीं हो सकता, जब तक कि बैंकों को ग्राहकों के पैसों पर एकतरफा नियम बनाने की छूट मिलती रहेगी। बैंकों की जब मर्जी होती है, वह किसी न किसी चार्ज के रूप में हमसे पैसे ऐंठ लेते हैं। बैंकों की इस मनमानी पर तत्काल रोक लगाई जानी चाहिए, ताकि देश में जिस तरह से भ्रम का माहौल बना हुआ है, उसे दूर किया जा सके। इसके लिए रिजर्व बैंक को भी बड़ी भूमिका निभानी होगी। हालांकि, अर्थशास्त्री यह कह रहे हैं कि चूंकि अब सरकार ने बैंकों से चार्ज लगाए जाने के फैसले पर विचार करने को कहा है, तो उम्मीद की जानी चाहिए कि वे अपने फैसले को वापस ले लेंगे।

हालांकि केंद्र सरकार की बैंकों से की गई अपील का कितना असर दिखेगा, यह तो वक्त बताएगा, मगर देश में बैंकों की तरफ से जिस तरह की अव्यवस्था का माहौल बना है, उसे देखते हुए कोई सख्त उपाय तो करना ही होगा। बैंकों को हद से ज्यादा छूट देने का ही नतीजा है कि आज वे चार्ज वसूलने की बात करने लगे हैं। अगर इस समय सरकार ने सख्ती नहीं दिखाई, तो संभव है कि आगे चलकर दूसरे बैंक भी शुल्क वसूलने की बात करने लगें।

सही पकड़े हैं...

महिला दिवस...

बांग्लादेश की इकलौती रिक्शा चालक 'क्रेजी आंटी'

विश्व महिला दिवस पर दुनियाभर में महिलाओं के उत्थान और विकास की बातें की जाएंगी। ऐसे में हम आपको एक ऐसी महिला की कहानी बता रहे हैं, जो पूरे एशिया महाद्वीप में महिला सशक्तिकरण की मिसाल हैं। मोसम्मत जैसमिन पूरे बांग्लादेश की इकलौती महिला रिक्शा चालक हैं। महिलाओं के लिहाज से बांग्लादेश बेहद पिछड़ा माना जाता है। यहां महिलाओं को पर्दे की आड़ में रखकर उनकी स्वतंत्रता और अधिकारों को दबाया जाता है। ऐसे समाज में मोसम्मत जैसमिन अपनी बुलंद सोच और फौलादी इरादों के दम पर रिक्शा चलाकर अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण कर रही हैं।

चटगांव शहर में 45 साल की मोसम्मत को लोग क्रेजी आंटी के नाम से भी जानते हैं। मोसम्मत ने बताया, करीब छह-सात साल पहले पति ने दूसरी शादी कर ली थी। वे और उनके तीन बच्चे अकेले पड़ गए। वह अपने बच्चों को अच्छा खाना और अच्छी पढ़ाई देना चाहती थीं। शुरुआत में तो मोसम्मत ने दूसरे के घरों में काम करना शुरू किया, लेकिन इससे गुजारा नहीं हो पा रहा था। इसके बाद उन्होंने फैक्ट्रियों में भी काम किया, लेकिन यहां ड्यूटी के हिसाब के पैसे नहीं मिलते थे। बच्चों को भी समय नहीं दे पा रही थीं।

इसके बाद मोसम्मत ने रिक्शा किराए पर लेकर चलाना शुरू किया। शुरुआत में तो लोग इस हिम्मती महिला का मजाक उड़ाते थे। कई बार तो लोग उनके रिक्शे पर बैठने से भी डरते थे। कई ग्राहक तो रिक्शे पर बैठने के बजाय दो चार बातें सुना जाते थे। कई बार उन्हें यह बातें बुरी भी लगतीं, मगर बच्चों की जरूरतों का ख्याल आता, तो वे फिर से अपनी ड्यूटी पर लौट जातीं। मोसम्मत रिक्शा चलाने के दौरान अपनी सुरक्षा का भी ख्याल रखती हैं। इसलिए वह हेलमेट लगाकर रिक्शा चलाती हैं। वह कहती है, भगवान ने सभी को दो हाथ, दो पैर दिए हैं, मेरे भी सही सलामत हैं, तो भला मैं किसी के सामने झोली क्यों फैलाऊं? मोसम्मत रोजाना आठ घंटे रिक्शा चलाती हैं, जिससे 500 रुपए तक कमा लेती हैं। वह अपने जैसी दूसरी महिलाओं से कहती हैं कि हर महिला को समझना होगा कि जब तक वे डरती रहेंगी, तब तक समाज उन्हें दबाता रहेगा।

यूपी चुनाव में नेपथ्य में दिखे कई दिग्गज

कृष्ण प्रताप सिंह
(वरिष्ठ पत्रकार)
email: kp_faizabad@yahoo.com

उत्तरप्रदेश के विधानसभा चुनाव के लिए जब प्रचार का दौर थम चुका है, तो ऐसे कई नेताओं के बारे में बात स्वाभाविक हो जाती है, जो चुनाव से गायब रहे। इन नेताओं में मुलायम सिंह यादव समेत कई ऐसे नाम हैं, जो पिछले चुनाव में केंद्र बिंदु रहे थे। इस बार का चुनाव अखिलेश यादव, राहुल गांधी, मायावती और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तक सिमटा रहा। अब देखना है कि राजनीतिक दिग्गजों के बगैर कौन सी पार्टी 11 मार्च को सत्ता तक पहुंच पाती है।

थर्ड एंगल

अब, जबकि उत्तरप्रदेश विधानसभा चुनाव में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर मुख्यमंत्री अखिलेश यादव और कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी तक सभी स्टार प्रचारकों का 'चढ़ाव' खत्म हो चुका है, तो मुलायम सिंह यादव से लेकर मुरली मनोहर जोशी तक प्रदेश की राजनीति के उन धुरंधरों पर भी एक नजर डालना दिलचस्प है, जो इस चुनाव में अलग-अलग कारणों से बेभाव होकर हाशिए पर चले जाने या वनवास अपनाने को अभिशप्त हो गए। सबसे पहले मुलायम सिंह की बात करें, तो वर्ष-1989 के बाद उत्तरप्रदेश का यह पहला चुनाव है, जिसमें उनकी औपचारिक उपस्थिति तक नहीं दिखी। उन्हीं के बनाए उनके मुख्यमंत्री बेटे अखिलेश यादव द्वारा सपा और फिर सरकार दोनों में किए गए अप्रत्याशित तख्तापलट से पहले शायद ही किसी को अंदेशा रहा हो कि उनके जैसे डबल ट्रिपल गेमों के पहलवान ने जिस राजनीतिक साम्राज्य को बड़े मन से खड़ा किया था, उनके परिजनों के बीच ही छिड़ा सत्तासंघर्ष उसमें उनकी पारी को ऐसे करुण अंत तक पहुंचा देगा। पांच दशकों तक फ्रंटफुट पर खेलते रहे इस महारथी ने राजनीति के मैदान से जाते-जाते एक रिकार्ड कायम कर लिया, बिना सदस्यता लिए पुरानी पार्टी लोकदल का स्टार प्रचारक बनकर!

विडंबना की गाज उन पर कुछ ऐसी गिरी कि वे पुराने गिले-शिकवे भुलाकर बेटे के प्रत्याशियों के प्रचार के लिए तैयार भी हुए, तो बेटे ने इस काम के लिए उन्हें पूछा तक नहीं और उनकी भूमिका छोटे भाई शिवपाल और छोटी बहू अपर्णा के प्रचार तक सीमित हो गई। शिवपाल की तो उनसे भी बुरी गत बनी, क्योंकि जिस झगड़े ने बाप-बेटे को जुदा किया, वह वास्तव में चाचा-भतीजे का ही था। भतीजे ने अनुग्रह करके जसवंतनगर की पैतृक सीट से चाचा का टिकट नहीं काटा, लेकिन वहां प्रचार करने गया, तो उनका खूब मजाक उड़ाया। इतना ही नहीं, उन्हें किसी और सीट की ओर झांकने तक नहीं दिया। उसके एक और चाचा बेनी प्रसाद वर्मा कांग्रेस व सपा दोनों में स्टार प्रचारक रहे हैं। वे सपा से ही कांग्रेस में गए थे और कुछ माह पहले राज्यसभा की सदस्यता के लिए पुराने घर में वापस आए, तो उसका कांग्रेस से गठबंधन हो गया। घरवापसी का कारण बताते हुए वे कहते थे कि कांग्रेस में रहकर भतीजे का विरोध नहीं करना चाहते थे, पर बदले हुए समीकरणों ने उनकी किस्मत का ताला ऐसा बंद किया कि वे उसे अब तक खोल ही नहीं पाए हैं।

बेनी को अपने बेटे के लिए मनचाही सीट से एक अदद टिकट के भी लाले पड़ गए। जिस भतीजे का विरोध नहीं करना चाहते थे, वह उनके गृहनगर बाराबंकी में सपा प्रत्याशियों का प्रचार करने आया, तो भी उन्हें नहीं पूछा। तोहमत लगा गया सो अलग कि अपने स्वार्थों के लिए बाप-बेटे में झगड़ा कराने वालों में वे भी थे। तब तक बेचारे बेनी के पास कोई मंच ही नहीं बचा था, जिस पर जाकर वे जवाब दे पाते। इसलिए बाराबंकी में भीतरघात कर सपा प्रत्याशियों को हराने में ही लगे रहे। भतीजे का कहर एक अन्य चाचा अमर सिंह पर भी बरपा। बार-बार 'बाहरी' और 'दलाल' कहने के बाद उसने सपा से उनकी छुट्टी की, तो वे 'छुट्टा सांड' होकर इधर-उधर मुंह मारने लगे। यह उनके खुद के ही शब्द हैं, जो उन्होंने अपने लिए कहे थे। दूसरे खेमे की ओर मुंह करें, तो जनसंघ के वक्त से अब तक लंबा राजनीतिक अनुभव रखने वाले भाजपा के पूर्व अध्यक्ष डॉ. मुरली मनोहर जोशी की हालत इस मायने में मुलायम से बेहतर रही कि जहां मुलायम अपने संसदीय क्षेत्र आजमगढ़ में भी प्रचार करने नहीं जा सके, जोशी ने अपने संसदीय क्षेत्र कानपुर में भाजपा प्रत्याशियों के लिए वोट मांगे। हां, स्टार प्रचारकों की सूची में शामिल करने के बावजूद भाजपा ने अन्यत्र कहीं भी उनका इस्तेमाल नहीं किया। उनसे भले तो बड़बोले विनय कटियार ही रहे, जिनका नाम पहले स्टार प्रचारकों की सूची से ही नदारद था, लेकिन बाद में सूची में आया, तो उन्होंने कई क्षेत्रों में भगवान राम के नाम पर वोट मांगे।

कटियार के उलट सुल्तानपुर के युवा भाजपा सांसद वरुण गांधी परिदृश्य से पूरी तरह बाहर रहे। पार्टी ने उन्हें दूसरे व तीसरे चरण के लिए स्टार प्रचारक बनाया था, लेकिन उन्होंने अपने संसदीय क्षेत्र के प्रत्याशियों तक के लिए कोई सभा नहीं की। उनकी मां मेनका गांधी भी केंद्रीय मंत्री होने के बावजूद अपने संसदीय क्षेत्र पीलीभीत से बाहर नहीं गईं। पिछले चुनाव में भड़काऊ बयानों से ख्याति अर्जित करने वाले वरुण चाहते थे कि भाजपा उन्हें मुख्यमंत्री पद का प्रत्याशी बनाए। इसके लिए जनसेवा के काम और लॉबिंग भी शुरू की थी, मगर कुछ भी उनके काम नहीं आया। वैसे ही जैसे मंत्री स्मृति ईरानी भी लोकसभा चुनाव में राहुल गांधी को टक्कर देने के क्रेडिट पर भी भाजपा के लिए प्रचार का काम नहीं पा सकीं। उनकी रहस्यमय गैरहाजिरी अमेठी में उसी तरह चर्चित रही, जैसे कांग्रेस की स्टार प्रचारक प्रियंका गांधी का थोड़ी देर के लिए राहुल के साथ रायबरेली की सभा में दिखना और नेपथ्य में चले जाना।

कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के बारे में तो खैर लोगों को पहले से पता था कि वे बीमार हैं और इस कारण प्रचार अभियान में शामिल नहीं हो सकेंगी। इसकी क्षतिपूर्ति करते हुए उन्होंने बाद में रायबरेली के वोटरों को एक बेहद इमोशनल पत्र भी लिखा। भाजपा में कई स्टार प्रचारकों को इसलिए भी मौका नहीं मिला कि पार्टी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर ही निर्भर करती रही। इसलिए कई की मुराद पूरी नहीं हो पाई। मुराद तो खैर बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की भी पूरी नहीं हुई, जो एक समय इस चुनाव में 'निर्णायक भूमिका' निभाने की तैयारी कर रहे थे। उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह भी राजस्थान की राज्यपाली के चक्कर में अपने अरमान नहीं निकाल सके। उनके उलट खुद को 'चुनावों का डॉक्टर' कहने वाले बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और राजद सुप्रीमो लालू प्रसाद यादव ने जरूर कुछ चुनावी सभाओं में 'कम्पाउंडर' नरेंद्र मोदी के खिलाफ निचले स्तर की राजनीति की।